International Journal of Business Economics and Management Research
Vol. 7, Issue 3, March 2016 IF:4.963 ISSN: (2229-4848)
www.skirec.org Email Id: skirec.org@gmail.com

"आर्थिक मंदी से उत्पन्न बेरोजगारी की समस्या एवं समाधान : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण"

डॉ0 सुमन
एसोसिएट प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग
रघुनाथ गर्ल्स पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, मेरठ, उ0 प्र0, (भारत)

सारांश

बेरोजगारी समाज में बहुत से समस्याओं को जन्म देने लगती है और यदि वह मौसमी और आर्थिक कारणों से हो तो यह राष्ट्रीय समस्या का कारण बन जाती है। राष्ट्रीय समस्याओं का समाजिक समाधान न होकर राजनीतिक और सरकारी योजनाओं के माध्यम से हल करने की पहल से बेरोजगारी के राष्ट्रीय समस्या से निजात पाया जा सकता है। वर्तमान सामय की राजनीतिक अस्थिरता और राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी और जात–पात असमानता और धार्मिक भावनाओं के आधार पर जन्में राजनीतिक दलों को इस बात से कोई लेना–देना नहीं होता है कि राष्ट्र की मूल समस्या क्या है और उसका समाधान किस प्रकार से किया जा सकता है। मैं अपने इस शोध पत्र के माध्यम से इस राष्ट्रव्यापी समस्या का अध्ययन कर उसका सामजशास्त्रीय विश्लेषण के माध्यम से उसका समाज के माध्यम से समाधान के उपायों को खोजने का प्रयत्न की हुँ।

मुख्य बिन्दुः आर्थिक बूम, चक्रीय बेरोजगारी, आर्थिक मंदी, राजनीतिक अस्थिरता

जिन मानवीय समस्याओं ने राष्ट्रीय नेताओं को चिन्तित एवं स्वयं मानवता को कुंठित किया है उनमें बेरोजगारी या बेरोजगारी की समस्या प्रमुख है। आज हम अपने वैज्ञानिक शक्ति से शक्तिमान होने का दम भरते हैं, औद्योगिक विकास को आर्थिक उन्नति का आधार मानते हैं और शिक्षा के विस्तार के द्वारा अज्ञानता को दूर करने का प्रयास करते हैं; पन्रतु वहीं हम जब बेरोजगारी के सामने सिर झुका देते हैं तो हमारी समस्त सफलताएँ और उपलब्धियाँ स्वयं हमारी हँसी उड़ाती हैं। एक स्वस्थ, सबल और सक्षम व्यक्ति के लिए यह कितना भयंकर अभिशाप है कि काम करने की योग्यता और इच्छा होते हुए भी उसे काम करने का अवसर नहीं मिलता और वह रोजी–रोटी के लिए तरस जाता है। यही बेरोजगारी है और यही बेरोजगारी का परिणाम भी पर इस सम्बन्ध में और कुछ विवेचना करने से पहले बेरोजगारी का अर्थ समझ लेना उचित होगा।

बेरोजगारी का अर्थ और परिभाषा

बेरोजगारी वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति को काम करने योग्य होते हुए और उस समय प्रचलित मजदूरी या पारिश्रमिक की दर पर काम करने की इच्छा रखते हुए भी काम करने में असफल होता है।

प्रिबास ने बेरोजगारी की परिभाषा करते हुए लिखा है, **"बेरोजगारी श्रम बाजार की वह दशा है जिसमें श्रम–शक्ति की पूर्ति कार्य करने के स्थानों की संख्या से अधिक होती है।"**

फ्लोरेन्स के शब्दो में, **"बेरोजगारी उस व्यक्ति की निष्क्रियता के रूप में परिभाषित की जा सकती है जो कार्य करने के योग्य एवं इच्छुक है।"**

फेयरचाइल्ड के अनुसार, **"बेरोजगारी एक सामान्य श्रमजीवी वर्ग के सदस्य को सामान्य समय में, सामान्य कार्य करने की दशाओं में, सामान्य वेतन पर मिलने वाले कम से अनिच्छापूर्वक और जबरदस्ती अलग कर देना है।"**

सक्सेना के अनुसार, **"एक व्यक्ति को जो काम करने के योग्य है और काम करना चाहता है, उसे देश में प्रचलित मजदूरी की दर पर काम न मिलने की अवस्था को बेरोजगारी कहेंगे।"**

स्पष्ट है कि बेकार व्यक्ति वही होगा जो काम करने की इच्छा होते हुए तथा काम करने के योग्यता होने पर भी रोजगार से वंचित है। जो व्यक्ति शारीरिक अथवा मानसिक दृष्टिकोण से काम करने के योग्य नहीं, उसे काम अगर नहीं मिलता है तो वह बेकार नहीं कहा जाएगा। इसी प्रकार साधु–सन्यासी तथा भिखारी यद्यपि काम करने के योग्य होते हैं, पर चूँकि वे काम करना हीं चाहते, इसलिये उन्हें भी बेकार नहीं कहा जा सकता। इसी तरह वह व्यक्ति बेकार नहीं है जो देश में मजदूरी की आम प्रचलित दर जैसे 15 रुपये प्रतिदिन होते हुए 25 रुपये प्रतिदिन से कम पर काम करने को तैयार नहीं है। इस स्थिति में उसकी इच्छानुसार मजदूरी न मिलने के कारण वह व्यक्ति कार्य नहीं करेगा या उसे रोजगार नहीं मिल सकेगा, पर उस व्यक्ति को बेकार नहीं कहा जायेगा।

बेरोजगारी के भेद या रूप

सामान्यतः बेरोजगारी के निम्नलिखित छः रूपों का वर्णन किया जाता है:

1. **मौसमी बेरोजगारी** – कुछ उद्योगों या व्यापार की प्रकृति इस प्रकार की होती है कि वे पूरे साल में केवल कुछ महीनों में ही चलते हैं। उदाहरणार्थ बर्फ और चीनी मिलें साल में 6–7 महीनें ही कार्य करती हैं। शेष महीनों में इन उद्योगों में लगे मजदूर बेकार रहते हैं। अतः इस प्रकार की बेरोजगारी को मौसमी बेरोजगारी कहते हैं।
2. **आकस्मिक बेरोजगारी** – आकस्मिक बेरोजगारी वह बेरोजगारी है जो अचानक हो आकस्मिक रूप से मजदूरों की संख्या में वृद्धि हो जाने के फलस्वरूप पैदा हो जाती है। आर्थिक मन्दी (economic depression) या युद्धकाल के बाद प्रायः इसी प्रकार की बेरोजगारी विकसित होती है।
3. **चक्रीय बेरोजगारी** – इस प्रकार की बेरोजगारी व्यापार चक्र में उतर–चढ़ाव के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में, उन्नत व्यापार में एकाएक मन्दी आ जाने पर श्रमिकों को काम से हटाना पड़ता है। इसी को चक्रीय बेरोजगारी कहा जाता है।
4. **ग्रामीण बेरोजगारी** – गाँवों में किसान लोग कृषि– कार्य में केवल कुछ समय ही व्यस्त रहते हैं, शेष समय के लिए उनके पास कृषि से सम्बन्धित कोई कार्य नहीं होता अर्थात् वे बेकार रहते हैं। इसी को ग्रामीण बेरोजगारी कहा गया है।
5. **अर्द्ध–बेरोजगारी** – कभी–कभी मिलों, कारखानों और कार्यालयो में आवश्यकता से अधिक लोगों को भर्ती कर लिया जाता है। चूँकि इन दोनों के लिए काम कम होता है, अतः उन्हें सुविधाएँ और वेतन भी कम मिलता है। इस स्थिति को अर्द्ध–बेरोजगारी कहा जाएगा।
6. **औद्योगिक –बेरोजगारी** – कभी–कभी श्रमिकों की हड़ताल या मालिकों द्वारा औद्योगिक संस्थाओं में तालाबन्दी के कारण भी हजारों श्रमिक बेकार हो जाते हैं, या अन्य किसी कारण से कोई मिल या कारखाना बन्द हो जाने से श्रमिक बेकार हो जाते हैं। इसी को औद्योगिक बेरोजगारी कहते हैं।

भारतवर्ष में बेरोजगारी

भारतवर्ष में वास्तव में कितने बेरोजगार हैं, इसके सम्बन्ध में कोई भी निश्चित आँकड़ें हमें उपलब्ध नहीं हैं फिर भी रोजगार दफ्तरों से प्राप्त आकड़ों की तुलना करने से देश में बढ़ती हुई बेरोजगारी की गम्भीरता का आभास होता है। सन् 1970 के अन्त तक 91 लाख व्यक्ति विभिन्न रोजगार कार्यालयों के चालू रजिस्टर में दर्ज थे, जो 31 दिसम्बर 1981 में बढ़कर 178.38 लाख तथा 31 दिसम्बर, 1996 को 587 लाख हो गए। इस संख्या का वर्ष 2002 तक बढ़कर 990 लाख हो जाने का अनुमान है। आठवी योजना के दस्तावेजों के अनुसार सन् 1992–97 के दौरान रोजगार चाहने वालों की अनुमानित संख्या 500 लाख (पाँच करोड़) होगी। जून, 2001 के अन्त तक देश के विभिन्न रोजगार कार्यालयों में 596 लाख लोग पंजीकृत थे। लेकिन सभी बेरोजगारों के नाम रोजगार कार्यालयों के रजिस्टरों में नहीं चढ़ते। इसीलिए एक

अनुमान के अनुसार यह कहना गलत न होगा कि जब हम 21 वीं सदी में प्रवेश करेंगे तो भारत मे बेकार लोगों की संख्या कम से कम 150 करोड़ होगी। अनुमान यह भी है कि तब तक हमारी आबादी 150 करोड़ तक पहुँच जाएगी। इस हिसाब से भारत का लगभग हर सातवाँ इन्सान बेरोजगार होगा।

भारत में शिक्षित बेरोजगारी

भारत में शिक्षित बेरोजगारी जिसमें युवक और युवतियों की संख्या काफी अधिक है। शिक्षित बेरोजगारों की संख्या कला, विज्ञान और वाणिज्य के स्नातकों में केन्द्रित है। नवीनतम सरकारी अनुमानों के अनुसार इस समय शिक्षित बेरोजगारों की संख्या 63 लाख है। इतना ही नहीं, विज्ञान और टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में बेरोजगारी की संख्या 6.7 लाख होने का अनुमान है।

बेरोजगारी के सामान्य कारण

बेरोजगारी या बेरोजगारी के निम्नलिखित कारणों का उल्लेख किया जा सकता है:

1. **श्रम की मांग की पूर्ति में असन्तुलन** – यह कारण परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यह मानी हुई बात है कि किसी समय विशेष में किसी देश में कार्य करने के स्थानों की संख्या निश्चित होती है और उसी के अनुसार श्रम की माँग भी हुआ करती है। अगर श्रमिकों की माँग कम है और काम करने के इच्छुक योग्य व्यक्तियो ंकी संख्या ज्यादा है तो सभी लोगो ंको रोजगार नहीं मिल पाता और बेरोजगारी फैलने लगती है।
2. **उपभोग की अपेक्षा बचत में अधिक्य होना – श्री कीन्स** का मत है राष्ट्रीय आय का एक निश्चित भाग उपभोग कर व्यय किया जाना चाहिए तथा शेष भाग बचत के रूप में रखा जाना चाहिए; परन्तु जब उपभोग पर किए जाने वाले व्यय की मात्रा घटने लगती है और बचाए जाने वाले अंश की मात्रा बढ़ती है तभी बेरोजगारी फैलती है इसका कारण यह है कि उपभोग पर व्यय करने से उपभोग्य पदार्थों की मांग घटती हैं और उसी अनुपात में उन चीजों का उत्पादन करने वाली औद्योगिक संस्थाओं को या तो संकुचित किया जाता है या कुछ औद्योगिक संस्थाओं को बन्द कर दिया जाता है। दोनों ही दशाओं में बेरोजगारी फैलती है।
3. **श्रम–संघों की मांग** – श्रमिकों संघ प्रायः मजदूरी में वृद्धि करने के लिए मिलों या कारखानों के मालिकों को विवश करते हैं। मजदूरी बढ़ जाने से वस्तुओं की उत्पादन लागत भी बढ़ जाती है और उत्पादक वर्ग (मिल मालिक) को हानि होने लगती है। इस अवस्था को बचने के लिए उत्पादक वर्ग मशीनों का अधिकाधिक प्रयोग करके श्रमिकों की मांग को घटाते हैं जिससे बेरोजगारी पनपती है।
4. **विवेकीकरण**– विवेकीकरण की अवस्था में भी बेरोजगारी पनप सकती है क्योंकि इसमें अधिक कुशल तथा इच्छी मशीनों और प्रविधियों को काम में लाया जाता है, जिससे श्रम की बचत होती है और अनेक श्रमिकों को काम से हटाकर बेकार कर दिया जाता है।
5. **जनसंख्या में वृद्धि** – श्री माल्थस के अनुसार जनसंख्या की वृद्धि से भी बेरोजगारी फैलती है। क्योंकि जिस अनुपात में जनसंख्या में वृद्धि होती है उस अनुपात में रोजगार की सुविधाओं की वृद्धि नहीं की जा सकती। दूसरे शब्दों में, जनसंख्या में वृद्धि प्रत्यक्ष रूप से बेरोजगारी को बढ़ावा देती है।

बेरोजगारी के परिणाम

बेरोजगारी व्यक्ति तथा समुदाय दोनों के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। बेरोजगारी वह अवस्था है, जो व्यक्ति के जीवन के आनन्दों को नष्ट कर देती है तथा समुदाय के आर्थिक जीवन को खोखला करती है। अमेरिका के भूतपूर्व

राष्ट्रपति **एच. हूवर** ने सच ही कहा है कि **"बेरोजगारी से बढ़कर संसार में और कोई बर्बादी नहीं है।"** काम करने के इच्छुक व्यक्ति को रोजगार न मिलने पर जितना कष्ट होता है उसे केवल वही जानता है। व्यक्ति तथा समुदाय के दृष्टिकोण से बेरोजगारी के निम्नलिखित परिणाम उल्लेखनीय हैं:

1. **अनेक मानसिक रोग** – बेरोजगारी अनेक मानसिक रोगों को उत्पन्न कर सकती है। बेरोजगार व्यक्ति आर्थिक कष्टों के बीच परिवार के अन्य सदस्यों को कष्टों को देखता है जिसका बहुत बुरा प्रभाव उसके मन पर पड़ता है और वह सदैव चिन्तित रहता है। चिन्तिरूपी नागिन उसके जीवन में निरन्तर विष उंड़ेलती रहती है जो उसके जीवन को नष्ट कर देती है।
2. **सामान्य निर्धनता में वृद्धि** – बेकार व्यक्ति अपनी तथा अपने आश्रितों को मौलिक आवश्यकताओं तक की पूर्ति नहीं कर पाता है। उसे न तो उचित ढंग से खाने को मिलता है और न ही अच्छे मकानों में रहने की सुविधा प्राप्त होती है। इससे न केवल उसके रहन–सहन का स्तर घटना है बल्कि उसका स्वास्थ्य भी दिन–प्रतिदिन गिरता जाता है और वह किसी न किसी रोग के पंजे में फँस जाता है। इससे उसकी कार्यकुशलता भी घटती है और भविष्य में उसके लिए रोजगार पाने की संभावना कम हो जाती है। इससे सामान्य व्यक्ति निर्धनता के पंजे में जकड़ा रहता है। वास्तविकता तो यह कि बेरोजगारी भारतीय निर्धनता का एक आधारभूत कारक है।
3. **नैतिक पतन**– बेरोजगारी की अवस्था व्यक्ति के नैतिक स्त को गिरा देती है। बेरोजगारी की अवस्था में एक व्यक्ति अपने प्रियजनों को निरन्तर नाना प्रकार के कष्टों को सहते देखता है, यहीं तक कि अपनी आँखों के सामने उन्हें भूख से तड़पते हुए देखता है। एक सीमा के बाद यह दृश्य उसके लिए असहाय हो जाता है और इसे सहन करने की अपेक्षा चोरी, डकैती, जालसाजी या वेश्यावृत्ति के रास्ते को अपना लेना उसके लिए सरल होता है।
4. **अनेक सामाजिक समस्याएँ** – बेरोजगारी भीख माँगने, जुआ खेलने और शराब पीने आदि सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है। हर तरफ से निराशा और असफल व्यक्ति शराब पीकर अपनी समस्त निराशाओं को भूलने का प्रयत्न करता है और अपने तथा अपने परिवार के लिए अधिकतर बर्बादी को आमन्त्रित करता है। बेकार व्यक्ति इसी प्रकार जुआ खेलकर रहा–सहा धन भी उसमें हार जाता है और जीवन के समस्त हाहाकार को लेकर घर लौटता है। अन्त में उसके लिए एक ही रास्ता रह जाता है और वह है भीख की झोली फैला देना। इस प्रकार देश में भिखमंगों की एक नई समस्या का जन्म होता है।
5. **पारिवारिक विघटन** – बेरोजगारों की अवस्था में पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया भी क्रियाशील हो जाती है, क्योंकि स्त्रियाँ भी घर छोड़कर बाहर काम करने के लिए जाती हैं जिससे पारिवारिक व्यवस्था बिगड़ जाती है तथा बच्चों का लालन–पालन ठीक ढंग से नहीं हो पाता है।
6. **विद्रोह** – बेरोजगारी की समस्या क्रान्ति को जन्म दे सकती है। बेकार व्यक्ति अभाव में पीड़ित होता है। उसे हर दुःख और कष्ट को सहना पड़ता है। इसके बीच जब वह यह देखता है कि कुछ बड़े आदमी तिजोरियों में लाखों–करोड़ों रुपये भरे हुए आराम और विलास का जीवन बिता रहे हैं, तो उसके लिए अपने अभाव और कष्टों को सहना सम्भव नहीं होता है और वह उन धनिको के विरूद्ध विद्रोह का बिगुल बजा सकता है।
7. **प्रगति में बाधक** – बेरोजगारी देश की प्रगति में बाधक है क्योंकि बेकार व्यक्तियों की सेवाओं सेा समाज लाभ नहीं उठ पाता है और सब मिलाकर उसकी प्रगति के लिए काम नहीं कर पाते हैं। यह देश या समुदाय के लिए बहुत बड़ी आर्थिक तथा सामाजिक हानि है।

8. **भावी पीढ़ी को हानि –** बेरोजगारी की स्थिति में अन्य रूप में भी समुदाय को घोर हानि पहुँचती है, क्योंकि इस अवस्था में माता–पिता बच्चों का लालन–पालन, उचित ढंग से नहीं कर पाते हैं, जिससे समुदाय की आने वाली पीढ़ी अयोग्य, दुर्बल तथा निकम्मी हो जाती है।

एक स्वस्थ्य समाज की कल्पना हम तभी कर सकते हैं जब उस समाज के मनुष्यों की सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक स्तर लगभग समान हो। इसमें से किसी एक घटक में कमी या वृद्धि होने पर समाज में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है तथा समाज विघटन की ओर अग्रसर होने लगता है। आज के समाज में समानता का मुख्य आधार आर्थिक समृद्धि हो गया है। आर्थिक दृष्टि से हम समाज की रूपरेखा तैयार कर हरे है; आर्थिक स्थिति ही व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को निर्धारित कर रहा है।

वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा नीजिकरण की 1991 की नीति से हमारा भारतीय समाज की आर्थिक प्रतिस्पर्धा में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेने लगा है। अतः जिसका प्रभाव हमारे समाज पर भी दिखाई पड़ रहा है।

पूंजीपति वर्ग हो या सर्वहारा वर्ग आज आर्थिक सम्पन्नता के लिए नित् नये–नये प्रयोग करने के लिए तत्पर है तथा प्रयोग भी कर रहा है। इसी का परिणाम है कि पूंजीवादी अमेरिका में पूंजीपति वर्ग के पास पूंजी इतनी एकत्रित हो गई कि उसे पूंजी को गैर–विकासात्मक परिसम्पत्तियों में बिना सोचे समझे लगाया गया। इसके तहत अमेरिका के बड़े–बड़े बैंकों ने 'नो वर्क नो जाब' वर्ग को बिना साख इतिहास की जांच किये ऊँचे दर पर बड़े स्तर पर ऋण वितरित किए गए। चूँकि आर्थिक सम्पन्नता प्रत्येक वर्ग की आवश्यकता होती है अतः ऊँचे ब्याज दर के बावजूद भी अधिक से अधिक ऋण लिये गए। जिसका परिणाम यह हुआ कि ऋण की अदायगी तो दूर इसके ब्याज को भी नहीं लौटाया गया। जिसका परिणाम यह निकला कि अमेरिका के बड़े–बड़े बैंकों को दिवालिया होते समय नहीं लगा, जिससे अमेरिका आर्थिक संकट में पड़ गया। चूँकि अमेरिका आर्थिक महाशक्ति के रूप में जाना जाता है तथा विश्व के अनेक देशों की अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित करता है। इस कारण विश्व में आर्थिक मंदी फैल गयी।

आर्थिक मन्दी – मन्दीकाल में मूल्य–स्तर बहुत नीचे हो जाता है जिससे उत्पादक वर्ग को हानी होती है। इस हानि से बचने के लिए वे उत्पादन कार्य बन्द कर देते हैं या श्रमिकों की छँटनी शुरू कर देते हैं। दोनों ही अवस्थाओं में बेरोजगारी को जन्म मिलता है।

व्यक्तिगत रूप से भारत, अमेरिका को सबसे अधिक वस्तुओं का निर्यात करता है। अतः भारत पर मंदी का प्रभाव पड़ना निश्चित था।

आर्थिक मंदी का एक कारण खनिज तेलों के मूल्य में भारी वृद्धि भी रहा है जिसके कारण देश–विदेश के शेयर बाजारों में तेजी दर्ज की गई। अमेरिकी बैंकों के दिवालिया होने से विदेशों में निवेश पूंजी को वापस लिया गया जिससे शेयर बाजार औंधें मुँह गिरे तथा वैश्विक मंदी छा गई।

मंदी हो या बूम (तेजी) ये दोनों तो अर्थव्यवस्था के एक सिक्के के दो पहलू हैं जिनका सामना प्रत्येक अर्थव्यवस्था को करना पड़ता है लेकिन यहाँ यह विचारनीय है कि क्या कारण है बूम एक दशक के प्रारम्भ में तथा मंदी एक दशक के अन्त में ही आता है?

1929 की आर्थिक मंदी हो या 2008–09 की। इनका विश्लेषण करें तो हम पायेगें कि यह दशक के अन्तिम वर्षों में ही घटित हुई है। इसका कारण हम देख सकते है कि जब काई देश अपनी दशकीय आर्थिक वृद्धि की सीमा निर्धारित करता है तो एक दशक के प्रारम्भ में रोजगार, के साधन को उपलब्ध कराता है; उत्पादन में वृद्धि पर जोर तथा समाज कल्याण के कार्यक्रम को प्रोत्साहन देता है जिसके परिणामस्वरूप दशक वर्ग के अन्त तक आते–आते उस आर्थिक

सीमा को प्राप्त कर लेता है तथा लाभ को दूना करने के लिए अपनी नीति में परिवर्तन कर गलत नीति को लागू करता है जिसका परिणाम अन्ततः अर्थव्यवस्था के लिए घातक ही सिद्ध रहा है।

यही कारण है कि अमेरिका की लाभकारी नीति के कारण पूरे विश्व को आर्थिक मंदी से जूझना पड़ रहा है। भारत में भी इसका प्रभाव हम इस आकड़े से लगा सकते है कि 10 महीनों में जनवरी 2008 से अक्टूबर 2008 तक शेयर बाजार से 2759526 करोड़ रुपया गायब हो गया। जिसका प्रभाव हम समाज पर प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं। अकेले अमेरिका में 20 लाख कर्मचारियों को निकाला गया। इन गलत नीतियों का प्रभाव आज के युवाओं पर स्पष्ट देखा जा सकता है। जिन्हें अपना भविष्य संकट से घिरा हुआ दिखाई दे रहा है।

युवा कड़ी मेहनत एवं परिश्रम कर अपनी योग्यता साबित करने को तैयार है लेकिन वर्तमान दौर की मंदी उन्हें अपनी योग्यता साबित करने का मौका नहीं दे रही है। इस मंदी का एक कड़वा सच विशिष्ट प्रधान है जिसका उम्र 20 वर्ष है। इस युवा को एअर इण्डिया में केबिन क्रू के लिए नियुक्त किया गया था तथा प्रशिक्षण चल रहा था जिसके लिए विशिष्ट प्रधान ने 55,000 रुपये अदा किए गये थे। इसी मंदी के कारण अचानक उन्हें दो टूक शब्दों में सूचित किया जाता है कि उनकी सेवाओं की जरूरत नहीं है और साथ ही प्रशिक्षण शुल्क की वापसी का कोई आश्वासन नहीं दिया जाता है। इस तरह वर्तमान दौर में युवा दिग्भ्रमित नहीं हतोत्साहित भी हो रहा है।

अब यह सवाल उठता है कि क्या हम इस प्रकार के संकट से पार नहीं पा सकतें? मेरे विचार से निम्न बिन्दुओं द्वारा कुछ हद तक इस संकट से निजात मिल सकता है:–

- यदि वैश्वीकरण के फलस्वरूप पूरा विश्व एक गाँव बन गया है तो उस गाँव के निवासी समान रूप से विकसित होने चाहिए जबकि एक ओर अति विकसित देश विद्यमान है वहीं दूसरी ओर अविकसित देश असमानता को दर्शा रहे है। अतः सर्वांगीण विकास होना चाहिये।
- आज पूंजी का अत्यधिक निवेश प्राथमिक सेक्टर के बजाय द्वितीय व तृतीय सेक्टर में लगाया जा रहा है। जिससे ऐसे संकट को बढ़ावा मिल रहा है। प्राथमिक क्षेत्र (कृषि आदि) में पूंजी लगाने से ग्रामीण क्षेत्रो में रोजगार बढ़ेगा तथा साथ ही खाद्य संकट से भी निजात मिलेगा तथा मुद्रास्फीति व आर्थिक मंदी की संभावना कम रहेगी।
- उदारीकदरण के जरिये वर्तमान दौर में बिना जांच पड़ताल किये बिना निवेश को बढ़ावा दिया जा रहा है जिससे आर्थिक संकट को प्रोत्साहन मिल रहा है। अतः सम्बन्धित देशों के सरकारों को उदारीकरण के साथ कुछ शर्तों पर सख्ती की नीति लागू किया जाना चाहिये।
- निजीकरण पद्धति के द्वारा निजी कम्पनियों का एकाधिकार बढ़ गया है जो मनमाने ढंग से अपनी नीति को लागू कर रही है या मनवा रही है जिसके परिणाम घातक सिद्ध हो रहे हैं। इसको रोकने के लिए सम्बन्धित देशों के प्रमुखों को सार्वजनिक क्षेत्र की भागीदारी बढ़ानी चाहिए तथा सर्वहितकारी नीति को अपनाना चाहिये।

सरकारी नौकरियों में कमी तथा निजी कम्पनियों में एक निश्चित अन्तराल पर मंदी के कारण नौकरियों से निष्कासन को देखते हुए आज का युवा भविष्य को लेकर आशंकित है।

हम सभी भंलीभाँति जानते हैं कि समाज का भविष्य इन्हीं युवाओं के कन्धों पर निर्भर है लेकिन पहले इनके भविष्य की जिम्मेदारी भी इस समाज को लेनी होगी; अन्यथा आप या हम युवाओं से यह अपेक्षा करने के हकदार कतई नहीं होंगे कि वे समाज के भविष्य को सुनहरा बनायेगें।

सन्दर्भ सूची

1. मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ, 2003 सामाजिक समस्याएं विवेक प्रकाशन, दिल्ली।

2. Tripathi, R. N. 2011, Indian Social Problems DPS Publication, New Delhi.
3. इण्डिया टुडे 29 अक्टूबर 2008।
4. प्रतियोगिता दर्पण 2009 भारतीय अर्थव्यवस्था विशेषांक।
5. Marx, Karl, 1848, Communist Manifesto.
6. मनोरमा ईयर बुक, 2012